शिक्षा, बच्चे और मानव के शरीर, मस्तिक और आत्मा के सर्वश्रेष्ठ रूप को उजागर करती है ।

शिक्षा को दैनिक जीवन के प्रत्येक पहलू को अवशय छूना चाहिए और प्रत्येक स्त्री एवं पुरुष को अपने गाँव का बेहतर नागरिक बनाने में सहयोग करना चाहिए जिससे वो भारत एवं विश्व का बेहतर नागरिक बन सके ।

शोषण और अन्याय का वास्तविक उपचार अहिंसात्मक लोकतंत्र है अन्यथा सभी के लिए वास्तविक शिक्षा का प्रसार । समृद्ध व्यक्तियों को ख़िदमतगारी और निर्धन को स्वावलम्बन सिखलाना चाहिए।

– महात्मा गांधी

2102
विद्यया ऽमृतमश्नुते
एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

ISBN-978-81-7450-939-0

स्मृति व्याख्यान शृंखला

एनसीईआरटी

महात्मा गांधी
द्वितीय स्मृति व्याख्यान
2009

अनुपम मिश्र

1869-1948

एन सी ई आर टी

स्मृति व्याख्यान शृंखला

महात्मा गांधी द्वितीय स्मृति व्याख्यान-2009

एन.आई.ई.ऑडिटोरियम

एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

28 जनवरी 2009

अनुपम मिश्र

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

ISBN-978-81-7450-939-0

जनवरी 2009
माघ 1930

PD 1T ML

© *राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2009*

रु. 10.00

80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा गीता ऑफसेट प्रैस, सी-90, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, नयी दिल्ली-110 020 द्वारा मुद्रित।

विषय सूची

हमारे उद्देश्य *v*

खण्ड–1

शिक्षाशास्त्री गांधी

- शिक्षा के गांधीवादी प्रतिमान : शिक्षा जीवन के लिए, जीवन के ज़रिये से 1

खण्ड–2

2009 का गांधी स्मृति व्याख्यान

- राज, समाज और पानी 9
- वक्ता के बारे में 22

परिशिष्ट

- सारणी स्मृति व्याख्यान माला–2007–2008 24

हमारे उद्देश्य

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) एक शीर्ष संगठन है जो स्कूल और शिक्षक शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अनुसंधान, सर्वेक्षण, विकास, प्रशिक्षण और विस्तार कार्य करके केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों की सहायता करता है तथा उनको परामर्श देता है।[1]

परिषद के उद्देश्यों में से एक है- स्कूल और शिक्षक शिक्षा से संबंधित विचारों के वितरण-केन्द्र और प्रसारक के रूप में काम करना। इस भूमिका को निभाने के लिए तथा महान शिक्षा विचारकों के जीवन एवं कार्य का यशोगान करने के लिए हमने वर्तमान स्मृति व्याख्यान माला शुरू की है। हमारा लक्ष्य भारत के प्रख्यात पुरुषों एवं महिलाओं द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में दिए गए बीजगर्भित योगदान के बारे में जन जागरूकता के स्तर को ऊपर उठाने का प्रयत्न करना है। हमें उम्मीद है कि इस प्रकार की जागरूकता से संवाद और चर्चा की एक शृंखला सृजित होगी। आशा है कि राष्ट्रीय जीवन के इस महत्वपूर्ण आयाम में जनता के स्थाई योगदान को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ यह शिक्षा को बौद्धिक जिज्ञासा का जीवंत विषय बनाएगा।

स्मृति व्याख्यान माला के अंतर्गत 9 प्रख्यात भारतीय शैक्षिक विचारकों और मार्ग प्रदाताओं के जीवन एवं कार्य का यशोगान करने वाले लोक व्याख्यान शामिल होंगे।

शीर्षक	**स्थान**
महात्मा गांधी स्मृति व्याख्यान	इंडिया इंटरनेशनल सेंटर (आईआईसी), नयी दिल्ली
ज़ाकिर हुसैन स्मृति व्याख्यान	क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, मैसूर
मारजोरी साइकेस स्मृति व्याख्यान	क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, अजमेर
टैगोर स्मृति व्याख्यान	क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भुवनेश्वर
महादेवी वर्मा स्मृति व्याख्यान	क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल
बी.एम. पुघ स्मृति व्याख्यान	पूर्वोत्तर क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, शिलांग
गिजुभाई बधेखा स्मृति व्याख्यान	मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट,चेन्नई
श्री अरविंदो स्मृति व्याख्यान	प्रेसिडेंसी कॉलेज, कोलकाता
सावित्री बाई फुले स्मृति व्याख्यान	एस.एन.डी.टी. महिला महाविद्यालय, मुम्बई

1. एनसीईआरटी के बारे में अधिक जानकारी www.ncert.nic.in पर उपलब्ध है।

हम अंग्रेजी में या किसी अन्य भारतीय भाषा में व्याख्यान देने के लिए शिक्षा जगत और सार्वजनिक जीवन के लब्ध-प्रतिष्ठ पुरुषों एवं महिलाओं को आमंत्रित करेंगे। हमारा आशय विशाल श्रोतागणों विशेषकर शिक्षकों, छात्रों, अभिभावकों, लेखकों, कलाकारों, गैर सरकारी संगठनों, सरकारी कर्मचारियों तथा स्थानीय समुदाय के लोगों तक पहुँचना है।

व्यापक प्रसार के लिए व्याख्यान कम्पैक्ट डिस्क (सीडी) में तथा मुद्रित पुस्तिकाओं के रूप में उपलब्ध कराए जाएंगे। प्रत्येक पुस्तिका में दो खंड होंगे। खंड एक में स्मृति व्याख्यान के प्रयोजन के साथ-साथ संबंधित शैक्षिक विचारक के जीवन एवं कार्य का संक्षिप्त ब्यौरा होगा तथा खंड दो में वक्ता की संक्षिप्त पृष्ठभूमि के साथ पूरा व्याख्यान होगा।

इस पांडुलिपि को अंतिम रूप देने में मैं जूनियर प्रोजेक्ट फैलो सुश्री शादाब सुबहान के योगदान का उल्लेख करना चाहती हूँ ।

हमें आशा है कि ये सभी व्याख्यान मालाएं हमारे श्रोताओं तथा आम जनता के लिए उपयोगी होंगी।

अनुपम आहुजा
संयोजक

खण्ड-1

शिक्षाशास्त्री गांधी

शिक्षा के गांधीवादी प्रतिमान : शिक्षा जीवन के लिए, जीवन के ज़रिये से

*लेखक : अनिल सेठी**

*अनुवादक : कुसुम बाँठिया**

गांधीजी का जीवन खद्दर की जटिल बुनावट वाली चादर जैसा था और शैक्षिक चिंतन के प्रति उनका जो योगदान है वह इस जटिल बुनावट का ही एक हिस्सा है। जैसे कई अन्य क्षेत्रों में, उसी तरह इस क्षेत्र में गांधीजी के हस्तक्षेप के पीछे उनकी कल्पनाशील सक्रियता और साथ ही अन्य लोगों के साथ उनका निरंतर संवाद था। नई तालीम (या गांधी जी के शब्दों में 'बुनियादी तालीम') के बारे में उनके विचार उनकी पत्रिकाओं के द्वारा 1937 में सामने आए थे। इन विचारों ने तुरंत ही सारे देश में दिलचस्पी भी उकसाई और विवाद भी, और यह दिलचस्पी तथा विवाद आज तक जारी है। तेज़ी से बदल रही हमारी आज की दुनिया असमानता, उपभोक्तावाद और ग़रीबी से बदहाल है। गांधी द्वारा सुझाए गए अनेक इलाजों से इस दुनिया को भी लाभ मिल सकता है - इन इलाजों में उनके शिक्षा संबंधी विचार भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।

हम सभी जानते हैं कि गांधी जी कोई प्रशिक्षित शिक्षाशास्त्री, शिक्षक या दार्शनिक नहीं थे। कई अन्य विषयों की तरह उनके शिक्षा संबंधी विचार भी इस मुद्दे पर किसी सैद्धांतिक कवायद से नहीं बल्कि उनकी व्यापक जन-संबद्धता से उभरे थे। गांधी जी धुआँधार लिखते थे और बहस-मुबाहिसे के लिए भी उतने ही तत्पर रहते थे। वे अपने समय के ज्वलंत प्रश्नों पर सार्वजनिक बहसें छेड़ा करते थे। जन संगठन पर आधारित उनके आंदोलनों की प्रकृति में ही जन-सहभागिता तथा संवादिता निहित थी। हर रंग की अतिवादी तथा विभाजक राजनीति का उन्होंने प्रतिरोध किया और इस बात का भी कि विचार-विमर्श होना ही नहीं चाहिए। साथियों, विरोधियों तथा अन्य सबसे भी वे संवाद कायम करने के इच्छुक रहते थे। यहाँ तक कि उनकी राजनीतिक शैली को विद्वानों ने

* अनिल सेठी राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली में इतिहास के प्रोफ़ेसर हैं।

* डॉ. कुसुम बाँठिया कई वर्षों तक हिंदी विभाग, देशबंधु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में रीडर के पद पर कार्य करती रही। वहीं से उन्होंने अवकाश प्राप्त किया। डॉ. बाँठिया ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी भी पढ़ाई है।

'संवादमूलक प्रतिरोध' का नाम दिया है। 1937 से 1948 तक गांधी जी अक्सर शिक्षा से संबद्ध सवालों पर लिखते रहते थे। इस विषय पर अपने विचारों की प्रथम घोषणा उन्होंने 31 जुलाई 1937 के *हरिजन* में की थी और इस बारे में औरों के विचार आमंत्रित करके उन्होंने एक संवाद भी स्थापित करना चाहा था।

ज़ाहिर है कि बुनियादी तालीम की प्रासंगिकता केवल उसी संदर्भ तक सीमित नहीं रही जिस संदर्भ में इसके मुद्दे पहले-पहल उठे थे। फिर भी यहाँ उस मूल संदर्भ को स्पष्ट कर देना उपयुक्त होगा। सन् 1937 में ब्रिटिश भारत के कई प्रांतों में कांग्रेस की सरकार बनी। अब उसके सामने देश की शिक्षा व्यवस्था में फिर से प्राण फूँकने और उसे विस्तार देने का काम था। लेकिन सभी प्रांतों में मंत्रिमंडलों के पास आर्थिक संसाधन सीमित ही थे और शिक्षा पर खर्च बढ़ाने की कोई गुंजाइश नहीं थी। चूँकि आबकारी विभाग प्रांतीय सरकार के अंतर्गत आता था तो एक उपाय तो यह था कि इस स्रोत से धन लेकर स्कूलों को यथासंभव कुशलता से चलाया जाए। लेकिन राष्ट्रीय नीति के स्तर पर कांग्रेस शराबबंदी के लिए प्रतिबद्ध थी। दल के मंत्रियों की दुविधा का ब्यौरा जी. रामनाथन ने इस प्रकार दिया है :

> शराबबंदी का मतलब था- एक ओर तो इतने अधिक राजस्व की हानि और दूसरी ओर इसे लागू करने में कुछ अतिरिक्त खर्च की आवश्यकता। संसाधनों पर इस दुहरी मार से मंत्रियों के हाथ में शिक्षा जैसे राष्ट्र निर्माण लक्ष्य पर खर्च करने को बहुत ही कम बचता। ऐसे में ... कांग्रेसी मंत्री या तो शिक्षा के विस्तार को स्थगित रखकर मद्य निषेध को अग्रसर करते या मद्य निषेध को स्थगित रखकर शराब से मिलने वाले राजस्व का उपयोग स्कूल बनाने और अध्यापकों के वेतन में करते। समस्या थी एक ऐसे उपाय की तलाश करना जिससे एक ही वक़्त में दोनों आदर्शों पर चला जा सके। दूसरे शब्दों में, एक ऐसी शिक्षा-नीति का विकास ज़रूरी था जिसके अंतर्गत प्रचुर आर्थिक संसाधनों का सहारा लिए बगैर भी स्कूल बढ़ सकें।[1]

जैसा कि प्राय: ही होता रहा था, गांधीजी ने इस चुनौती का सर्जनात्मक जवाब दिया जो साथ ही विवादास्पद भी रहा। उन्होंने एक क्रांतिकारी हल सुझाया :

1. प्रारंभिक शिक्षा वर्तमान मैट्रिकुलेशन तक हो जिसमें से अंग्रेज़ी को हटा दिया जाए और कोई हस्तशिल्प जोड़ दिया जाए। इसमें 7 से 14 या अधिक वर्ष की आयु के विद्यार्थी आएं।

---

1. जी रामनाथन, *एजुकेशन फ्राम डेवी टू गांधी : दी थियरी ऑफ बेसिक एजुकेशन* (बाम्बे, 1962), पृष्ठ 3-4

2. हस्तशिल्प का चुनाव लोगों के प्रमुख धंधों में से किया जाए।
3. समस्त शिक्षा हस्तशिल्प से सहसंबद्ध हो।
4. ऐसी शिक्षा उत्पादक और स्वनिर्भर हो।[2]

इनमें से अंतिम प्रस्ताव इस बात की वकालत करता था कि छात्र दस्तकारी की जो चीज़ें बनाएँ, उनके ज़रिये स्कूल अपना खर्च चलाएं। इसी बात ने कुछ विरोध पैदा किया। वर्धा में अक्तूबर 1937 में स्वयं गांधी जी की अध्यक्षता में हुए एक सम्मेलन में कोई भी इस योजना का ज्यों का त्यों समर्थन करने को राज़ी नहीं था। उनके सुझावों को कुछ हलका करके केवल यही प्रस्ताव लाया गया कि 'सम्मेलन को उम्मीद है कि शिक्षा की यह पद्धति क्रमशः अध्यापकों के पारिश्रमिक की व्यवस्था करने में समर्थ हो जाएगी।' शिक्षाशास्त्रियों को आशंका थी कि गांधीवादी विद्यालयों में पेशाकेंद्रित शिक्षा बच्चों को बाल श्रमिक बनाकर रख देगी। दूसरी ओर इस विचार को काफ़ी हद तक मान्यता भी मिल रही थी। उदाहरण के लिए तत्कालीन भारत सरकार की एक रिपोर्ट (शिक्षा कमिश्नर जॉन सार्जेण्ट द्वारा प्रारूपित) में बुनियादी तालीम के औचित्य को स्वीकारा गया है।

देश के लिए बुनियादी तालीम की एक योजना तैयार करने के लिए वर्धा सम्मेलन में डॉ. जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई। समिति की नज़र में यह नई तालीम 'बच्चों और बच्चों के समग्र- तन, मन और वृति के- विकास'[3] को और (ऐसे) सहकारी समुदायों के निर्माण को आधार देगी जिनमें बचपन और किशोरावस्था की लचीली उम्र के दौरान बच्चों की सभी गतिविधियों में समाज सेवा का उद्देश्य ही प्रधान होगा।[4] समिति की रिपोर्ट ने बिल्कुल स्पष्ट रूप से कहा :

> इस नई योजना का प्रारंभिक उद्देश्य ऐसे दस्तकारों को पैदा करना *नहीं* है जो *मशीनी* ढंग से, कोई शिल्पकार्य करते चले जाएं, बल्कि शिल्पकार्य में जो शैक्षणिक संसाधन निहित होते हैं, यह उनका उपयोग करना चाहती है। इसमें इस बात की ज़रूरत है कि रचनात्मक कार्य स्कूल के पाठ्यक्रम- उसके शिल्प पक्ष- का हिस्सा भर न हो बल्कि अन्य तमाम विषय पढ़ाने की *पद्धति* को भी प्रेरित करें। इसमें अधिगम के दौरान सहयोगी गतिविधियों, योजना, सटीकता, पहलकदमी और व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी पर बल दिया जाना चाहिए।[5] (शंकों पर बल मूल लेख के अनुसार)।

---

2. वही, पृष्ठ 5
3. *हरिजन*, 31 जुलाई,1937
4. *बेसिक नैशनल एजुकेशन, : रिपोर्ट ऑफ द जाकिर हुसैन कमेटी एण्ड द डीटेल्ड सिलेबस* (वर्धा, 1938), पृष्ठ 38।
5. वही, पृष्ठ 14

परवर्ती दशकों में तटस्थ टिप्पणीकार भी इसी प्रकार के मत व्यक्त करते रहे हैं। फिर भी इस ढाँचे को अक्सर ही दस्तकारी के माध्यम से शिक्षा का नाम देकर बड़ी आसानी से (और बड़े सतही तरीके से) खारिज कर दिया जाता है।

गांधीजी की योजना में दस्तकारी का स्थान केंद्र में भले ही रहा हो मगर यह नई तालीम का 'संपूर्ण सत्य' नहीं थी। गांधीजी के अनुसार स्थानीय दस्तकारी बच्चों को स्थानीय शिल्प, पर्यावरण, समाज, संस्कृति तथा व्यायाम आदि के स्थानीय स्तर पर प्रचलित लोकाचारों से तुरंत ही जोड़ देती है। इस प्रकार बुनियादी तालीम का अर्थ था अपने अस्तित्व की स्थितियों और अपने समाज से शिक्षार्थी का सक्रिय जुड़ाव ताकि वह अतिश्रम तथा शोषण से अपनी मुक्ति का रास्ता तलाश सके। गांधीजी इस बात पर बल देते थे कि 'शिक्षा ही सच्ची आज़दी देती है।'[6] 'उनकी मूल चिंताएं थीं जुल्म और अस्वाधीनता को दूर करना : ग्राम स्वराज, स्थानीय स्तर पर आत्मनिर्भरता, मज़दूरी के बदले रोटी और उपनिवेशवाद के अंतर्गत अंधाधुंध तरीके से होने वाले औद्योगीकरण की स्थितियों में व्यक्तियों तथा समाजों के बीच पनपते बेगानेपन के अनेक रूपों पर विराम लगाने की आवश्यकता। उनका शैक्षिक दर्शन इन मूल चिंताओं से घनिष्ठ भाव से जुड़ा था। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि आज के कुछ अत्यंत प्रभावशाली अर्थशास्त्री भी विकास को 'लोगों की सच्ची स्वतंत्रता के विस्तार की प्रक्रिया' के रूप में देखते हैं और शिक्षा के प्रसार को उस प्रक्रिया का बेहद महत्वपूर्ण घटक मानते हैं।[7]

समकालीन संज्ञानात्मक बाल-मनोविज्ञान भी गांधीजी के शिक्षा संबंधी अनेक विचारों का समर्थन करता है। समीक्षकों ने दिखलाया है कि किस प्रकार बच्चे के निकटतम परिवेश का इस्तेमाल उसे भाषाएँ, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान और कलाओं का ज्ञान देने में किया जा सकता है और ज्ञान तथा सीखने की प्रक्रिया को वास्तविक जीवन की गतिविधियों से समाकलित करके किस प्रकार विभिन्न विषय पढ़ाए जा सकते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में बच्चों को शिक्षक/सहायक से अलग, स्वतंत्र रूप से काम करने के अवसर दिए जाने चाहिए और उन्हें नियमित रूप से कक्षा के बाहर भी काम करना चाहिए, साथ ही उन्हें छोटे-छोटे समूहों में भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। दरअसल इस अभिविन्यास के कारण ही बुनियादी पाठशालाओं में निर्धारित पाठ्यपुस्तकों को धर्मग्रन्थों जैसा महत्व

6. जे.डी. सेठी के 'अ गांधियन क्रिटीक आफ माडर्न इंडियन एजुकेशन इन रिलेशन टू इकॉनॉमिक डैवलपमेंट' में उद्धरित *गाँधी टुडे* (दिल्ली, 1978), पृष्ठ 126
7. अमर्त्य सेन, *डैवलपमेंट एज़ फ्रीडम* (न्यूयॉर्क, 1999), पृष्ठ 3

नहीं दिया जाता जो कि आज भी हमारी पाठ्यपुस्तक आधारित परीक्षा संस्कृति का अंग है। इन पाठशालाओं में अध्यापकों से अपेक्षा की जाती थी कि वे शिक्षण-अधिगम के लिए स्वयं ही गतिविधियों और सामग्रियों का विकास करें। उन्हें आरंभिक कक्षाओं में पाठ्यपुस्तकों के इस्तेमाल से बचने को प्रेरित किया जाता था और परवर्ती कक्षाओं में भी उनके कम से कम उपयोग की सलाह दी जाती थी। यह सर्वज्ञात तथ्य है कि गांधीजी पाठ्यपुस्तक आधारित शिक्षा को औपनिवेशक आयात मानते थे और नापसंद करते थे :

> यदि पाठ्यपुस्तकों को शिक्षा का वाहक माना जाए तो अध्यापक की *जीवंत दुनिया* की कीमत नाम की ही रह जाती है। जो अध्यापक पाठ्यपुस्तकों से पढ़ाता है, वह अपने विद्यार्थियों में मौलिकता नहीं जमा सकता। वह स्वयं पाठ्यपुस्तकों का गुलाम बन जाता है और मौलिक होने का उसे न सुयोग मिलता है, न अवसर। इसलिए ऐसा लगता है कि पाठ्यपुस्तकें जितनी कम हों, अध्यापक और उसके विद्यार्थियों के लिए उतना ही अच्छा होता है।[8] (बल मेरी ओर से)

फिर भी, जैसा कि कृष्ण कुमार का तर्क है, पाठ्यपुस्तकें यदि अध्यापक और विद्यार्थी दोनों को ही यथार्थ से काट दें और उनके लिए बोझ बन जाएँ तो यह समस्या उनकी हीन गुणवत्ता या संबद्ध पाठ्यक्रम की वजह से हो सकती है, पाठ्यपुस्तकों के प्रयोग के कारण नहीं।

पिछले छः दशकों में हमारे ज़मीनी स्तर के जो अनुभव एकत्रित हुए हैं वे भी गांधी जी के शिक्षा संबंधी विचारों को प्रासंगिक सिद्ध करते हैं। हमारे सामाजिक कार्यकर्ता तथा योजना निर्माता अभाव तथा पिछड़ेपन से लड़ने के लिए शिक्षा को उस बहुस्तरीय समाकलित रणनीति के मूल तत्वों में से एक मानते हैं जो पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों या अन्य शिक्षार्थियों के ज़रिये सामाजिक परिवर्तन का प्रभावी कारक बनती है। मगर इसके लिए हमें एक ऐसी पद्धति रचनी होगी जो बच्चों को हमारे कुछ लिखने के लिए एक 'कोरा कागज़'[10] मात्र मानकर न चले। उदाहरण के लिए जब श्रमजीवी बच्चे शिक्षा के 'संगठित' क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो उनके पास वे कौशल, जानकारी और सामाजिक अंतर्दृष्टियाँ होती हैं जो उन्होंने श्रमजीवियों के तौर पर अर्जित की हैं। इसलिए उन्हें जो कुछ

---

8. 'टेक्स्ट बुक्स', *हरिजन*, 9 दिसम्बर, 1939, रजनी कुमार, अनिल सेठी और शालिनी सिक्का (संपादक), *स्कूल, सोसाइटी, नेशन : पापुलर एसेज़ इन एजुकेशन* (दिल्ली, 2005), पृष्ठ 43 में कृष्ण कुमार, के 'लिसनिंग टु गांधी' में उद्धृत
9. कृष्ण कुमार, 'लिसनिंग टु गांधी'- रजनी कुमार, अनिल सेठी और शालिनी सिक्का (सम्पादक), स्कूल, सोसाइटी, नेशन : पापुलर एसेज़ इन एजुकेशन (दिल्ली, 2005), पृष्ठ 44
10. यशपाल, करूणा चानना (संपादक) *ट्रांसफॉर्मेटिव लिंक्स बिट्वीन हायर एंड बेसिक एजुकेशन : मैपिंग द फील्ड* (दिल्ली, 2004), में 'आमुख', पृष्ठ 7

सिखाया जाए, उसे भी अनेक भूतपूर्व तथा वर्तमान अनुभवों के आधार पर ही गढ़ा जाना चाहिए। जैसा कि यशपाल बड़ी शिद्दत से मानते हैं, इन बच्चों के माता-पिता की जानकारियों और कौशलों को भी अनावश्यक नहीं माना जाना चाहिए। इन बच्चों को जो कुछ भी पढ़ाया जाए, उसका चुनाव तथा अभिकल्पना इस प्रकार होना चाहिए कि 'उत्पादन में शिक्षित' उनके माता-पिता उनकी पढ़ाई को आगे बढ़ाने में सहायक हो सकें। गांधीजी के 'जीवन के लिए और जीवन के ज़रिये शिक्षा' वाले सिद्धांत की याद ताज़ा करने वाली यह रणनीति न केवल स्कूल में बच्चों के अपने अनुभवों और गतिविधियों का ही लेखा लेगी बल्कि यह भी सुनिश्चित करेगी कि शिक्षक तथा योजना निर्माता शोषित वर्ग के भूमिहीन मज़दूरों, कचरा बीननेवालों, मिस्त्रियों आदि से भी कुछ सीखें। विशेषज्ञों को ऊँचा उठने के लिए झुकना भी होगा। यही गांधी जी का सहयोगी समुदायों वाला आदर्श था। यह हमें उस जीवंत संबंध की भी याद दिलाता है जो गांधी जी राजनीतिक स्वराज, बस्तियों में जनता के सशक्तीकरण और व्यापकतर सामाजिक परिवर्तन के बीच देखते थे और जिसे साररूप में 'संघर्ष के अवदान'[11] का नाम दिया गया।

नई तालीम की एक महत्वपूर्ण विशेषता को रेखांकित करना ज़रूरी है। हालाँकि विभिन्न प्रांतों में इसे लागू करने में इसके कुछ समर्थकों के सांप्रदायिक पूर्वाग्रह कहीं-कहीं झलक जाते होंगे लेकिन इस योजना में कहीं भी धार्मिक शिक्षा का प्रावधान नहीं था। सन् 1947 के शुरू में बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा पर ज़ाकिर हुसैन कमेटी के संयोजक ई.डब्लू. आर्यनायकम् को लिखे एक पत्र में गांधीजी ने इस सुझाव की आलोचना की थी कि राज्य को धर्म-शिक्षा से सरोकार रखना चाहिए :

> मैं नहीं मानता कि राज्य को धर्म-शिक्षा से सरोकार रखना चाहिए या वह इसे संभाल सकता है। मेरा मानना है कि धर्म-शिक्षा पर धार्मिक संगठनों का ही एकमात्र सरोकार होना चाहिए। धर्म और नीति-शास्त्र में घालमेल न करें। मेरा विश्वास है कि मूलभूत नैतिकता सभी धर्मों में होती है। मूलभूत नैतिकता की शिक्षा देना निस्संदेह राज्य का प्रकार्य है। धर्म शब्द से मुझे मूलभूत नैतिकता का नहीं बल्कि अलग-अलग नाम वाले संप्रदायों का ख़याल आता है। राजकीय सहायता प्राप्त धर्म और राजकीय चर्च से हम काफी तकलीफें उठा चुके हैं। जो समाज या समूह धर्म के अस्तित्व के लिए आंशिक या पूर्णरूप से राजकीय

11. गांधी जी के प्रतिरोधात्मक आंदोलन को रवींद्रनाथ ठाकुर ने 'संघर्ष का अवदान' नाम दिया था। उन्होंने इस मुहावरे का प्रयोग पहले पहल तब किया था जब गांधीजी ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैमज़े मैकडॉनाल्ड के कम्युनल अवार्ड (1932) के विरोध में उपवास कर रहे थे। द0 जहाँगीर पी. पटेल और मार्जरी साइक्स, *गांधी : हिज गिफ्ट आफ द फ़ाइट* (गोआ, 1987), पृष्ठ 21

सहायता पर निर्भर होता है, वह किसी धर्म के लायक ही नहीं होता बल्कि कहे जाने लायक उसका कोई धर्म ही नहीं होता।[12]

इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि यह बड़ी आसानी से मान लिया जाता है कि गांधीजी धर्म को राज्य के मामलों से अलग रखने के सिद्धांत के हामी नहीं थे। वे जीवन भर हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए प्रतिबद्ध रहे और जी-जान से सांप्रदायिकता विरोधी कार्यों में जुटे रहे। इन बातों के लिए भी यह माना जाता है कि ये सब धर्मों के प्रति उनके समान आदर भाव पर आधारित है, न कि पश्चिमी पद्धति के धर्म-निरपेक्ष सिद्धांतों पर। वे प्रार्थना सभाएं करते थे और बार-बार अपनी राजनीति को धर्म पर आधारित विवेक से प्रभावित बताते थे। इन बातों ने इस प्रकार के निष्कर्ष को और धार दी। मगर हमें याद रखना चाहिए कि उनमें जो धार्मिक सहिष्णुता थी, उसे लॉक के इस सिद्धांत से और बल मिला था कि राज्य को निजी आस्थाओं के क्षेत्र में दखल नहीं देना चाहिए - यह पूरी तरह व्यक्तिगत मामला है। 'बुनियादी नैतिकता', सामंजस्य, भाईचारे और मैत्री-भाव को बढ़ावा देने के लिए ही गांधीजी धर्म के विमर्श को जनता के बीच लाए। जब और जहाँ भी उन्हें महसूस हुआ कि जनता के बीच धर्म के उपयोग को लेकर संघर्ष, हिंसा और संकीर्णता में उबाल आ सकता है, वहीं उन्होंने इस उपयोग की निंदा की और राज्य की गतिविधियों को धर्म से बिल्कुल अलग कर देने की वकालत की।

गांधीजी को बच्चों से बहुत प्यार था। मार्जरी साइक्स को उनकी जो यादें हैं उनमें बच्चे ही बच्चे भरे हैं : 'शाम को गांधीजी जब टहलने जाते तो उनके चारों ओर बच्चे नाचते-कूदते चलते थे; वे उनके हाथों से लिपटते और उनके चुटकुलों पर हँसते थे। खुद गांधीजी भी बड़े मगन और तनावमुक्त होते थे : उस आधे घंटे में अपने आनंद के लिए वे अपने को पूरी तरह बच्चों के हवाले कर देते थे।'[13] अंत में एक असामान्य शिक्षक को इस श्रद्धांजलि का उपयुक्त समापन होगा, जर्मन किशोरों द्वारा लिखे गए निबंधों के संग्रह *व्हॉट गांधी मीन्स टू मी?* (गांधी मेरी नज़र में क्या हैं?) का स्मरण।[14] इन बच्चों ने बहुत सारे मुद्दों पर बात की है : नेपोलियन से सद्दाम हुसैन तक, सहिष्णुता और अंदरूनी ताक़त से लेकर दौलत और सत्ता तक, उपवास से आधुनिक दवाओं तक। इन निबंधों में एक ख़ास ईमानदारी की चमक है और सद्भाव तथा इन्सानी बंधुत्व की प्रवृत्ति।

---

12. ई डब्ल्यू आर्यनायकम् को गांधी जी का पत्र, 21 फरवरी, 1947, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी* (दिल्ली, 1999), खंड 94, पृष्ठ 19
13. जहाँगीर पी. पटेल और मार्जरी साइक्स *गांधी : हिज़ गिफ्ट ऑफ द फाइट* (गोआ, 1987), पृष्ठ 50
14. बेंजामिन पुटर, *व्हॉट गांधी मीन्स टु मी?* (दिल्ली, 2001)

ये हमें याद दिलाते हैं कि गांधी जी स्वास्थ्य तथा शिक्षा को स्वराज की कुँजी मानते थे। इससे हमें मार्जरी साइक्स द्वारा 1942–44 में गांधीजी की जेलयात्रा के समय का वह ब्यौरा भी याद आता है जिसमें उन्होंने बताया है कि 1942–44 के कारावास के दौरान गांधी जी ने किस प्रकार नई तालीम की अपनी समझ को और बढ़ाया था। उनका कहना था कि शिक्षा का क्रम तो उम्र भर चलना चाहिए, 'गर्भाधान से लेकर चिता तक'। इसे हमारे दैनिक जीवन के हर पक्ष को स्पर्श करना चाहिए और हर पुरुष तथा स्त्री की इस प्रकार सहायता करनी चाहिए कि वे अपने गाँव, पूरे भारत और विश्व तक के बेहतर नागरिक बन सकें'।[15] उन्होंने 'अहिंसक जनतंत्र' के लिए विस्तृत प्रशिक्षण का आह्वान किया : शोषण और अन्याय का सही इलाज है अहिंसक जनतंत्र, दूसरे शब्दों में, सबके लिए सच्ची शिक्षा। अमीरों को प्रबंधन की शिक्षा दी जानी चाहिए और गरीबों को अपनी सहायता आप करने की।'[16] गांधीजी सात से चौदह साल के बच्चों के लिए इस बहुत ही महत्वपूर्ण सामाजिक शिक्षा और विद्यालय से परे की 'पढ़ाई' के बीच होने वाले द्वंद्व का संधान कर रहे थे।

15. जहाँगीर पी. पटेल और मार्जरी साइक्स, *गांधी : हिज़ गिफ्ट ऑफ द फाइट* (गोआ, 1987), पृष्ठ 120
16. वही, पृष्ठ 121

खंड–2

शिक्षाशास्त्री गांधी

राज, समाज और पानी

वक्ता –अनुपम मिश्र

व्याख्यान का सार

देश में पानी का संकट जिस तरह से बढ़ता जा रहा है उसके बारे में अब कुछ अलग से बताना ज़रूरी नहीं लगता । जो संकट पहले गर्मी के दिनों में आता था, अब सर्दी के दिनों में भी सिर उठाने लगा है । पानी के मामले में देश की राजधानी दिल्ली भी काफ़ी गरीब साबित हो रही है ।

ऐसे में जहाँ देश की सबसे कम बरसात होती हो – हमारे राजस्थान के रेतीले इलाक़ों में समाज ने पानी के लिए अपने को सबसे अच्छे ढंग से संगठित किया था । कुछ हज़ार साल पुरानी यह परंपरा आज भी जारी है और जहाँ आधुनिकतम तकनीक से पानी देने की कोशिशें असफल हुई हैं, वहाँ एक बार फिर से इसी परंपरा ने लोगों के लिए साफ और मीठा पानी जुटाया है ।

हम कह सकते हैं कि पानी जुटाने की यह परंपरा समयसिद्ध और स्वयंसिद्ध साबित हुई है । अंग्रेज जब हमारे देश में आए थे तब उन्हें सचमुच कन्याकुमारी से कश्मीर तक छोटे बड़े कोई बीस लाख तालाब बने बनाए मिले थे । तब देश में कोई इंजीनियर नही था, इंजीनियरिंग सिखाने वाला कालेज नहीं था, सरकारी स्तर पर कोई सिंचाई विभाग नहीं था फिर भी पूरे देश में पानी और सिंचाई का सुंदर काम खड़ा था । गांधी जी ने आज से 100 साल पहले 'हिंद स्वराज' में देश के स्वावलंबन, सहकारिता और देश के निर्माण की जिन बातों की ओर इशारा किया था, वे सब हमें पानी के इस काम में बहुत सरलता और तरलता से देखने को मिल सकती हैं।

आज हमारे पढ़े लिखे समाज को ये जानकर काफी अचरज होगा कि देश का पहला इंजीनियरिंग कॉलेज 1847 में इन्ही ग्रामीण इंजीनियरों के बदौलत खुला था। आज सरकारें और समाज सेवी संस्थाएँ भी जिन्हें अनपढ़ बताती हैं और कुछ सिखाना चाहती हैं उन्हीं लोगों ने इस देश में इस कोने से उस कोने तक पानी की शिक्षा, पानी के सिद्धांत और पानी के व्यवहार का एक सुंदर ढाँचा खड़ा किया। इस ढाँचे का आकार इतना बड़ा था कि वो निराकार हो गया था।

इसका कोई केन्द्रीय बजट नहीं था, कोई सदस्य नही था, कोई नौकर चाकर नहीं था। फिर भी पूरे देश में पानी का काम बहुत खूबसूरती से चलाया जाता था।

तालाब बनवाने वालों की एक इकाई थी, बनाने वालों की एक दहाई थी और यह इकाई दहाई मिलकर सैंकड़ा, हजार बनती थी । लेकिन पिछले दौर में थोड़ी सी नई पढ़ाई पढ़े हुए समाज के एक छोटे से हिस्से ने इस इकाई, दहाई, सैंकड़ा को शून्य ही बना दिया है । लेकिन समाज का एक बड़ा हिस्सा आज भी पानी की इस शिक्षा और व्यवहार के काम में चुपचाप जुटा है ।

व्याख्यान का पाठ

कभी-कभी एक उदार मित्र का निर्णय कई लोगों को झंझट में डाल देता है। आज के इस प्रतिष्ठित व्याख्यान के लिए मुझे श्री कृष्ण कुमार जी ने चुनकर शायद ऐसा ही कुछ किया है।

इसे विनम्रता न मानें। यह परिषद् देश के शिक्षण अनुसंधान और प्रशिक्षण की एक बड़ी संस्था है। स्मृति व्याख्यान शृंखला की जो सुंदर कल्पना परिषद् ने की है, उसमें जो 9 विभूतियाँ हैं, वह भी एक गौरव की बात है। गांधीजी की स्मृति में रखे इस व्याख्यान का अपना एक विशिष्ट स्थान है। इसमें पहला व्याख्यान देने पिछले वर्ष जो विद्वान श्री क्रिस्टोफर विंच यहाँ पधारे थे, उनके बाद मेरा इस मंच पर खड़ा होना कोई खास मतलब नहीं रखता फिर भी कृष्ण कुमार जी का आदेश है, इसलिए मैं आपके सामने खड़ा हूँ।

मेरा तो परिचय भी कोई लंबा चौड़ा नहीं होगा। ऐसा कुछ न तो मैंने पढ़ा-पढ़ाया है, न कोई उल्लेखनीय काम ही किया है। एक पीढ़ी पहले के शब्दों में जिसे 'तार की भाषा' टेलिग्राम की भाषा कहते थे, या आज की पीढ़ी में जिसे एस.एम.एस. कहने लगे हैं, कुछ वैसे ही गिने चुने 20-20 शब्दों में मेरा परिचय, सचमुच बहुत सस्ते में निपट जाएगा। पहले परिचय ही दे दूँ अपना। सन् 1947 में मेरा जन्म वर्धा, महाराष्ट्र में हुआ। प्राथमिक साधारण पढ़ाई-लिखाई हैदराबाद बंबई और फिर अब छत्तीसगढ़ के एक गाँव बेमेतरा में। माध्यमिक स्कूल और फिर कॉलेज की और भी साधारण सी, काम चलाऊ पढ़ाई दिल्ली में। फिर पहली और जो आज आखिरी भी साबित हो रही है, ऐसी नौकरी दिल्ली में। एक बार फिर दोहरा दूँ कि गांधी शाँति प्रतिष्ठान की नौकरी की दिल्ली में, पर चाकरी की राजस्थान में। इस चाकरी ने मुझे बहुत कुछ दिया है। इतना कि यह छोटा-सा जीवन खूब संतोष से गुजर रहा है।

गांधी विचार क्या है, उसकी बारहखड़ी में क्या-क्या आता है- यह मैं न तब जानता था न आज भी कुछ कहने लायक जान पाया हूँ। पर राजस्थान की चाकरी ने मुझे समाज की बारहखड़ी से परिचित कराया। कोई 30 बरस से इस बारहखड़ी को सीख रहा हूँ और हर रोज इसमें कुछ नया जुड़ता ही चला जा रहा है। समाज की वर्णमाला में सचमुच अनगिनत वर्ण, रंग हैं। हमारी नई शिक्षा कुछ ऐसी हो गई है कि हम समाज के उदास रंग देखते रह जाते हैं, काले रंग को, उसके दोषों को कोसते रहते हैं पर उसके उजले चमकीले रंग देख नहीं पाते।

समाज कैसे चलता है, वह अपने सारे सदस्यों को कैसे संगठित करता है, कैसे उनका शिक्षण-प्रशिक्षण करता है, उन सब का उपयोग वह कैसी कुशलता से करता है, यह सब मुझे उसके एक सदस्य की तरह देखने-समझने का मौका मिला। वह कितनी लंबी योजना बना कर काम करता है, उसे भी देखने का मौका लगा। समाज का भूतकाल, वर्तमान और भविष्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी जुड़ता रहे, सधता रहे, सँभला रहे और छीजने के बदले सँवरता रहे- इस सब का विराट दर्शन मुझे विशाल पसरे रेगिस्तान में, मरुप्रदेश में मिला और आज भी मिलता ही चला जा रहा है।

आज आपके सामने मैं इस विशाल मरुभूमि में फैले रेत के विशाल साम्राज्य की एक चुटकी भर रेत शायद रख पाऊँ। पर मुझे उम्मीद है कि इस ज़रा-सी रेत के एक-एक कण में अपने समाज की शिक्षा, उसकी शिक्षण-प्रशिक्षण परंपराओं, उसके लिए बनाए गए सुंदर अलिखित पाठ्यक्रम, इसे लागू करने वाले विशाल संगठन की, कभी भी असफल न होने वाले उसके परिणामों की झलक, चमक और ऊष्मा आपको मिलेगी।

आज जहाँ रेत का विस्तार है, वहाँ कुछ लाख साल पहले समुद्र था। खारे पानी की विशाल जलराशि। लहरों पर लहरें। धरती का, भूमि का एक बित्ता टुकड़ा भी यहाँ नहीं था, उस समय। यह विशाल समुद्र कैसे लाखों बरस पहले सूखना शुरू हुआ, फिर कैसे हजारों बरस तक सूखता ही चला गया और फिर यह कैसे सुंदर, सुनहरा मरुप्रदेश बन गया, धरती धोरां री बन गया- इसे पढ़ने समझने में आपको भूगोल की किताबों, प्रागैतिहासिक पुस्तकों के ढेर में हजारों पन्ने पलटने पड़ सकते हैं। पर इस जटिल भौगोलिक घटना की बड़ी ही सरल समझ आपको यहाँ के समाज के मन में मिल जाएगी। वह इस सारे प्रपंच, प्रसंग को बस केवल दो शब्दों में याद रखता है- 'पलक दरियाव' यानी पलक झपकते ही जो दरिया, समुद्र, गायब हो जाए। लाखों बरस का गुणा-भाग, भजनफल,

अनगिनत शून्य वाली संख्याएं- सब कुछ अपने ब्लैक बोर्ड से उसने एक सधे शिक्षक की तरह डस्टर से मिटा कर चाक का चूरा झाड़ डाला और बस कहा 'पलक दरियाव'। जो समाज इतना पीछे इतनी समझदारी से झाँक सकता है वह उतना ही आगे अपने भविष्य में भी देख सकता है। वह उतनी ही सरलता, सहजता से फिर कह देता है- पलक दरियाव। यानी पलक झपकते ही यहाँ फिर कभी समुद्र आ सकता है। धारती के गरम होने समुद्र का स्तर उठने की जो चिंता आज हम विश्व के विशाल मंचों पर देख रहे हैं, उसकी एक छोटी-सी झलक आपको इस समाज के नुक्कड़ नाटक में नौटंकी में कभी भी कहीं भी आज से कुछ सौ बरस पहले भी मिल सकती थी। यहाँ की भाषा में, नए शिक्षा शास्त्री शायद इसे भाषा नहीं, बोली कहेंगे तो उस बोली में समुद्र, दरियाव के लिए एक शब्द है- हाकड़ो। हाकड़ो का एक अर्थ आत्मा भी है। आज की थोड़ी-सी नई किस्म की पढ़ाई पढ़ गया समाज इस इलाके को पानी के अभाव का इलाका मानता, बताता है। पर इस इलाके की आत्मा है हाकड़ो यानी पानी।

समय की अनादि-अनंत धारा को क्षण-क्षण में देखने और सृष्टि के विराट विस्तार को अणु में परखने वाली इस पलक ने, इस दृष्टि ने हाकड़ो को, समुद्र को जरूर खो दिया लेकिन उसने अपनी आत्मा में, मन में हाकड़ो की विशाल जल राशि को कण-कण में, बूँदों में देख लिया। उसने अखंड समुद्र को खंड-खंड कर अपने गाँव-गाँव, ठाँव-ठाँव फैला लिया। प्राथमिक शाला की पाठ्यपुस्तकों से लेकर देश के योजना आयोग तक के कागजों में राजस्थान की, विशेषकर इसके मरुप्रदेश की छवि एक सूखे, उजड़े और पिछड़े इलाके की है। थार रेगिस्तान का वर्णन तो कुछ ऐसा मिलेगा कि आपका कलेजा ही सूख जाए। देश के सभी राज्यों में क्षेत्रफल के आधार पर अब यह सबसे बड़ा प्रदेश है लेकिन वर्षा के वार्षिक औसत में यह देश के प्रदेशों में अंतिम है।

वर्षा को पुराने इंचों में नापें या नए मिलीमीटरों में, सेंटीमीटरों में, वह यहाँ सबसे कम गिरती है। देश की औसत वर्षा 110 सेंटीमीटर आँकी जाती है। उस हिसाब से राजस्थान का औसत लगभग आधा ही बैठता है-60 सेंटीमीटर। लेकिन औसत बताने वाले ये आँकड़े यहाँ का कोई ठीक चित्र नहीं दे सकते। राज्य के एक छोर से दूसरे छोर तक यह 100 सेंटीमीटर से 15 सेंटीमीटर तक और कभी तो उससे भी कम है।

भूगोल की किताबें प्रकृति को, वर्षा को इस मरुस्थल में एक अत्यंत कंजूस महाजन, साहूकार की तरह देखती हैं और इस इलाके को उसके शोषण का

दयनीय शिकार बताती हैं। राज्य के पूर्वी भाग से पश्चिमी भाग तक आते-आते वर्षा कम से कम होती जाती है। ठेठ पश्चिम यानी बाड़मेर, जैसलमेर तक जाते-जाते तो वह सूरज की तरह डूबने ही लगती है। जैसलमेर में वर्षा का सालाना आँकड़ा 15 सेंटीमीटर है। पर खुद जैसलमेर की गिनती देश के सबसे बड़े जिले के रूप में की जाती है। इसमें भी पूर्व और पश्चिम है। जैसलमेर का पश्चिमी भाग पाकिस्तान से सटा हिस्सा तो कुछ ऐसा है कि मानसून के बादल यहाँ तक आते-आते थक ही जाते हैं और कभी बस 7 सेंटीमीटर तो कभी 3-4 सेंटीमीटर पानी की हल्की सी बौछार कर विशाल नीले आकाश में एक मुट्ठी रूई के टुकड़े की तरह गायब हो जाते हैं। इसकी तुलना गोवा से, कोंकण से या फिर पाठ्यपुस्तकों से ही उभरे एक और स्थान चेरापूँजी से करें तो यहाँ आँकड़ा 1000 सेंटीमीटर भी पार कर जाता है।

मरुभूमि में वर्षा नहीं, सूरज बरसता है। औसत तापमान 50 डिग्री पर रहता है। तो पानी, वर्षा बहुत ही कम और सूरज खूब ज्यादा- ये दो बातें जहाँ एक हो जाएं वहाँ आज की पढ़ाई तो हमें यही बताती है कि जीवन दूभर हो जाता है। इसमें एक तीसरी चीज और जोड़ लें- यहाँ ज्यादातर हिस्सों में पाताल पानी, भूजल खारा है। पीने लायक नहीं है।

जीवन को बहुत ही कठिन बनाने वाले इन तीन बिन्दुओं से घिरा यह रेगिस्तान दुनिया के अन्य रेगिस्तानी इलाकों की तुलना में बहुत ही अलग है। यहाँ उनके मुकाबले ज्यादा बसावट है और उस बसावट में सुगंध भी है।

इस सुगंध का क्या रहस्य है। रहस्य है यहाँ के समाज में। मरुप्रदेश के समाज ने प्रकृति से मिलने वाले इतने कम पानी का, वर्षा का कभी रोना नहीं रोया। उसने इस सबको एक चुनौती की तरह लिया और अपने को ऊपर से नीचे तक इतना संगठित किया, कुछ इस ढंग से खड़ा किया कि पानी का स्वभाव पूरे समाज के स्वभाव में बहुत ही सरल और तरल ढंग से बहने लगा। 'साईं इतना दीजिए, जामे कुटुब समाय' के बदले उसने कहा होगा 'साईं जितना दीजिए, वामे कुटुंब समाय।' इतने कम पानी में उनसे इतना ठीक प्रबंध कर दिखाया कि वह भी प्यासा न रहे और साधु तो क्या असाधु को भी पानी मिल जाए।

पानी का काम यहाँ भाग्य भी है और कर्त्तव्य भी। वह सचमुच भाग्य ही तो था कि महाभारत युद्ध समाप्त होने के बाद श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र (हरियाणा) से अर्जुन को साथ लेकर वापस द्वारिका इसी मरुप्रदेश के रास्ते लौटे थे। यह विचित्र किस्सा बताता है कि उनका शानदार रथ जैसलमेर से गुजर रहा था। जैसलमेर

के पास त्रिकूट पर्वत पर उन्हें उत्तुंग ऋषि तपस्या करते मिले। श्रीकृष्ण ने उन्हें प्रणाम किया। फिर उनके तप से प्रसन्न होकर उन्होंने ऋषि से वर माँगने को कहा था। उत्तुंग का अर्थ है ऊँचा। ये ऋषि सचमुच ऊँचे निकले। उन्होंने अपने लिए कुछ नहीं मांगा। प्रभू से प्रार्थना की कि यदि मेरे कुछ पुण्य हैं तो भगवन वर दें कि इस मरुभूमि पर कभी जल का अकाल न रहे।

'तथास्तु', भगवान ने वरदान दे दिया था। कोई और समाज होता तो इस वरदान के बाद हाथ पर हाथ रख बैठ जाता। सोचता, कहता कि लो भगवान कृष्ण ने वरदान दे दिया है कि यहाँ पानी का अकाल नहीं पड़ेगा तो अब हमें क्या चिंता, हम काहे को कुछ करें। अब तो वही सब कुछ करेगा।

लेकिन मरुभूमि का भाग्यवान समाज मरुनायक (श्रीकृष्ण को मरुनायक भी कहा जाता है।) से ऐसा वरदान पाकर हाथ पर हाथ रख कर नहीं बैठा। उसने अपने को पानी के मामले में तरह-तरह से कसा। गाँव-गाँव, ठाँव-ठाँव, वर्षा को रोक लेने की, सहेज लेने की एक से एक सुंदर रीतियाँ खोजीं।

रीति के लिए यहाँ एक पुराना शब्द है वोज। वोज यानी रचना, मुक्ति और उपाय भी। इस वोज के अर्थ में विस्तार भी होता जाता है। हम पाते हैं कि पुराने प्रयोगों में वोज का उपयोग सामर्थ्य, विवेक और फिर विनम्रता के अर्थ में भी होता था। वर्षा की बूँदों को सहेज लेने का वोज यानी विवेक भी रहा और उसके साथ ही पूरी विनम्रता भी।

इसीलिए यहाँ समाज ने वर्षा को इंचों या सेंटीमीटरों में नहीं नापा। उसने तो उसे बूँदें में मापा होगा। पानी कम गिरता है? जी नहीं। पानी तो करोड़ों बूँदें में गिरता है। फिर ये बूँदों भी मामूली नहीं। उसने इन्हें 'रजत बूँदों' कहा। उसी ढंग से इनको देखा और समझा। अपनी इस अद्‌भुत समझ से, वोज से उसने इन रजत बूँदों को सहेजने की एक ऐसी भव्य परंपरा बना ली जिसकी धवल धारा इतिहास से निकल कर वर्तमान में तो बह ही रही है, वह भविष्य में भी बहेगी।

इतिहास, वर्तमान और भविष्य का ध्यान रखना, आज विज्ञान, पर्यावरण आदि के क्षेत्र में विकास की नई शब्दावली में एक आदर्श की तरह देखा जाता है। धरती के संसाधनों का उपयोग वर्तमान पीढ़ी किस संतुलन से करे कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी साफ हवा, पानी, जमीन, खेती, खनिज और शायद पैट्रोल भी उसी तरह मिले- जैसे आज मिलता है- ऐसी बात करने, कहने वाले बड़े पर्यावरणविद् कहलाते हैं। ऐसी बात तो यहाँ गाँव-गाँव में न जाने कब से न सिर्फ कही गई, उस पर लोगों ने अमल की भी लंबी परंपरा डाल कर दिखाई है।

जमीन पर इस आदर्श के अमल की बात बाद में। अभी तो थोड़ा ऊपर उठ आसमान छूकर देखें। बादल यहाँ सबसे कम आते हैं। पर बादलों के नाम यहाँ सबसे ज्यादा मिलते हैं। खड़ी बोली, और फिर संस्कृत से बरसे बादलों के नाम तो हैं ही पर यहाँ की बोली में तो जैसे इन नामों की घटा ही छा जाती है, झड़ी ही लग जाती है। और फिर आपके सामने कोई 40 नाम बादलों के, पर्यायवाची नहीं, 40 पक्के नामों की सूची भी बन सकती है। रुकिए, बड़ी सावधानी से बनाई गई इस सूची में कहीं भी, कभी भी कोई ग्वाला, चरवाहा चाहे जब दो चार नाम और जोड़ दे यह भी हो सकता है !

भाषा की और उसके साथ-साथ इस समाज की वर्षा संबंधित अनुभव-सम्पन्नता इन चालीस, बयालीस नामों में चुक नहीं जाती। वह इन बादलों के प्रकार, आकार, चाल-ढाल, स्वभाव, ईमानदारी, बेईमानी- सभी आधारों पर और आगे के वर्गीकरण करते चलता है। इनमें छितराए हुए बादलों के झुंड में से कुछ अलग-थलग पड़ गया एक छोटा-सा बादल भी उपेक्षा का पात्र नहीं है। उसका भी एक अलग नाम आपको मिल जाएगा- चूखो! मरुभूमि में सबसे दुलर्भ और कठिन काम, वर्षा कर चुके बादल, यानी अपना कर्त्तव्य पूरा करने के बाद किसी छोटी-सी पहाड़ी या रेत के टीले पर थोड़ा-सा टिक कर आराम फरमा रहे बादल को भी समाज पूरी कृतज्ञता से एक अलग नाम देता है: रींछी।

हमारा हिन्दी और शायद अंग्रेजी का संसार बरसने वाले पानी की यात्रा को दो रूपों में ही देख पाता है। एक है- सतह पर पानी और दूसरा है भूजल। नदी, नालों, तालाबों छोटी-बड़ी झीलों का पानी सतह पर है और फिर इससे रिस कर नीचे जमीन में उतरा पानी भूजल है। पर मरुभूमि के समाज ने अपने आसपास से, अपने पर्यावरण से, भूगोल से जो बुनियादी तालीम पाई थी, उसने उस आधार पर पानी का एक और प्रकार खोज निकाला। उसका नाम है- *रेजाणी* या *रेजवानी* पानी।

रेजाणी पानी हम पढ़े लिखे माने गए लोगों को आसानी से नहीं दिखने वाला। हम उसका स्पर्श भी ठीक से नहीं कर पाएं शायद। पर यह वहाँ की बुनियादी तालीम ही है, जिसने उस समाज को रेजाणी पानी का न सिर्फ दर्शन करवाया, उसे एकदम कठिन इलाके में, चारों तरफ खारे पानी से घिरे इलाके में अमृत जैसा पीने योग्य बना लेने की जटिल तकनीक भी दे दी।

पर जटिल तकनीक, जटिल ज्ञान किस काम का? समाज ने उसे बहुत ही सरल बना कर गाँव-गाँव में फेंक दिया। उसकी चर्चा शायद बाद में करें। अभी

तो पहले हम यह देखें कि खारे पानी से घिरे, कम पानी के बीच बसे हजारों गाँवों, कस्बों और शहरों में पानी का काम कैसे फैलाया गया।

ऐसा काम हमें आज करना हो तो हम प्रायः क्या करते हैं? एक बड़ी संस्था बनाते हैं। उसका मुख्यालय खोजते हैं। फिर शाखाएं, केन्द्र, उपकेन्द्र बनाते हैं। अध्यक्ष चुनते हैं, कार्यकारिणी, संचालक मंडल बनाते हैं। सैकड़ों कार्यकर्त्ताओं की भरती करते हैं। इस विशाल ढाँचे को चलाने के लिए बड़ा बजट जुटाते हैं। कुछ शासकीय स्रोत पर चलते हैं तो कुछ शासन को अछूत मान कर देशी स्रोतों से धन लाते हैं तो कुछ विदेशी अनुदान से भी परहेज नहीं करते। इतने सबके बाद काम हो जाए, जिस उद्देश्य से संस्था बनाई है, संगठन खड़ा किया है, वह हो जाए तो क्या कहना। पर कई बार यही नहीं हो पाता। बाकी सब कुछ होता रहता है, हड़ताल, ताला बंदी तक होती रहती है। इतना ही नहीं कभी-कभी हमारे ये सुंदर संगठन अच्छे ही लोगों के आपसी छोटे-मोटे मतभेदों के कारण टूट जाते हैं, विखर जाते हैं।

पर मरुभूमि का समाज ऐसा खतरा मोल ले ही नहीं सकता था। उसे तो सबसे कम पानी के इलाके में सबसे चुस्त, दुरुस्त संगठन न सिर्फ खड़ा करना था, उससे सौ टका काम भी निकालना था। इसलिए उसने खूब बड़ा संगठन बनाया। लेकिन वह केन्द्रीयकरण, विकेन्द्रीकरण आदि के चक्कर में नहीं पड़ा। उसने तो इस जरूरी काम का, जीवन देने वाले काम का, जीवन-टिकाए रखने वाली शिक्षा का इतना बड़ा संगठन बनाया, उसका आकार इतना बड़ा किया कि वह निराकार हो गया। निराकार एकदम दुनिया के चालू अर्थ में भी और ठीक आध्यात्मिक अर्थ में भी।

ऐसे अद्‌भुत निराकार संगठन को उसने न तो राज को सौंपा और न आज की नई भाषा में किसी सार्वजनिक क्षेत्र या निजी क्षेत्र को सौंपा। उसने तो इसे पुरानी भाषा के निजी हाथों में एक धरोहर की तरह प्यार, दुलार से रख दिया। घर-घर, गाँव-गाँव सब लोगों ने इस ढाँचे को बोझ की तरह नहीं, पूरी कृतज्ञता से सिर माथे पर उठाकर उसके निराकार को साकार कर दिया। पूरा समाज अपना वर्ण, वर्ग, प्रतिष्ठा, परिवार, सब कुछ भुलाकर सब कुछ मिटाकर, सब कुछ अर्पण कर पानी के इस काम में जुट गया। पानी के काम की इस विचित्र बुनियादी तालीम पर जो सुंदर इमारत खड़ी हुई है, जो ढाँचा बना है, वह निराकार है। इसलिए हमारे इस नए समाज ने उसे निर्गुण, और भी स्पष्ट कहें तो बिना किसी गुण वाला और भी साफ कहें तो अनेक दोषों वाला समाज मान कर अपने संसार से हटा ही दिया है।

लेकिन यह ढाँचा निराकार होते हुए भी बहुत ही गुनी है, सगुण है। यह जप करने लायक है। यह लोक शिक्षण की अद्‌भुत शाला है। लोक बुद्धि की इसमें पूरी ऊँचाई दिखेगी और लोक संग्रह की एक सतत चलने वाली महान गाथा भी।

हम सबने एक लंबे समय से लोक शक्ति की खूब बात की है। साम्यवाद से लेकर सर्वोदय तक ने लोक शक्ति की खूब उपासना की है। लेकिन हमने लोक बुद्धि को पहचाना नहीं इस दौर में। गांधीजी के एक अनन्य साथी दादा धर्माधिकारी निरुपाधिक मानव की प्रतिष्ठा पर बहुत बल देते थे। उस निरुपाधिक मानव की प्रतिष्ठा आपको यहाँ के पानी के काम में दिखेगी। इस लोक बुद्धि को हम देखने, समझने लगें तो हमें शायद फिर राजस्थान या मरुप्रदेश की अलग से बात करने की जरूरत नहीं बचेगी। हम जहाँ हैं, वहाँ उसका दर्शन होने लगेगा। तब शायद हम आपको यह भी पता चलेगा कि इस देश की वर्तमान, परंपरागत नहीं, वर्तमान तकनीकी शिक्षा की नींव में भी अनपढ़ कहलाने वाले समाज का ही प्रमुख योगदान रहा है। इसीलिए हमारे एक छोटे से कस्बे में, (किसी बड़े शहर में नहीं) देश का पहला इंजीनियरिंग कालेज खुला था। और उसमें प्रवेश पाने के लिए स्कूल की पढ़ाई की भी कोई जरूरत नहीं थी, अंग्रेजी के ज्ञान की भी नहीं। यह हमारे देश का पहला नहीं, एशिया का भी पहला इंजीनियरिंग कॉलेज था। वह पूरा किस्सा बहुत सी नई बातें बताता है। पर वह अपने-आप में एक लंबा प्रसंग है। उसकी तरफ इतना संकेत कर उसे यहीं छोड़ आगे बढ़ें।

महात्मा गांधी की स्मृति में एकत्र होते हुए हम इससे बेहतर और क्या कर सकते हैं कि पिछले दौर में हमने लोक बुद्धि को समझने, उसको प्रतिष्ठित करने का जो सहज रास्ता छोड़ दिया था उस पर वापस लौटने की कोशिश करें। उन बातों को, उन तरीकों को, संगठनों को विस्मृत करना प्रारंभ हो, जो लोक बुद्धि के रास्ते जाते नहीं। हमारे बहुत से कामकाज, क्रिया-कलाप, अक्सर अच्छी नीयत से भी की गई चिंताएं, बनाई गई योजनाएं बहुत हुआ तो समाज के एक बड़े भाग को 'हितग्राही' ही मानकर, हितग्राही बताकर चलती हैं। हम उनका कुछ उद्धार करने आए हैं, उपकार करने आए हैं- इससे थोड़ा बचें।

कई बार हम इस लोक जन, जनता वाली शब्दावली में ऐसे फँस जाते हैं कि फिर हम विज्ञान में भी जन विज्ञान, लोक विज्ञान की बात तो करते हैं पर प्रायः लोक विमुख खर्चीले विज्ञान का कोई सस्ता संस्करण ही उस नाम से खोज लाते हैं। लेकिन वह भी समाज में वैसा उतर नहीं पाता जैसा हम चाहते हैं। तब हम उदास, निराश भी होते हैं। अपनी असफलता के लिए उसी समाज को

कोसने लगते हैं जिसे हम बदलने, सुधारने निकल पड़े थे। उसने हमारी सुनी नहीं, ऐसा हमें लगने लगता है।

जसढोल यहाँ एक सुंदर शब्द है। जस यानी यश का ढोल। मरुप्रदेश में पानी के काम के बहाने एक जसढोल न जाने कितने सैकड़ों वर्षों से जोर-जोर से बज रहा था, पर हमने, हमारे इस नए समाज ने उसकी थाप, उसका संगीत सुना ही नहीं। आज उसकी स्वर लहरी, उसकी लय, थाप का कुछ अंश आप तक पहुँचाने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

शिक्षण, प्रशिक्षण आदि सभी प्रयासों में अक्षर का महत्व माना ही जाता है। यहाँ पानी का जो विशाल काम फैलाया गया, उसमें अक्षर ज्ञान को एकदम किनारे रख दिया गया। उससे परहेज नहीं पर जीवन ज्ञान और जीवन शिक्षा के क्षेत्र में उसकी अनिवार्यता नहीं स्वीकार की गई। अक्षर ज्ञान का यहाँ एक और अर्थ लगाया गया- क्षर, नष्ट न होने वाला ज्ञान।

उनकी इस परिभाषा से देखें बस दो उदाहरण। इनमें से एक का जिक्र पहले आया है पर अधूरा। खारे पानी के बीच अमृत जैसा मीठा पानी देने की एक पद्धति की तरफ कुछ संकेत किया था। रेगिस्तान में कुछ खास हिस्सों में प्रकृति ने रेत की विशाल राशि के नीचे एक आड़ी-तिरछी पट्टी भी चला रखी है। यह मेट या जिप्सम से बनी है। इस क्षेत्र में कोई 200-300 फुट की गहराई पर खूब पानी है, पर है पूणरूप से खारा। पीने के काम का नहीं। लेकिन इस जिप्सम के कारण ऊपर गिरने वाली थोड़ी-सी भी बरसात रेत में धीरे-धीरे छनकर इस पट्टी पर टकरा कर अटक जाती है और एक विशाल भाग में सतह से, भूमि से नीचे जिप्सम तक नमी की तरह फैल जाती है।

मरुप्रदेश का निरक्षर माना गया, अनपढ़ बताया गया समाज आज से कोई हजार बरस पहले रेत के टीलों, रेत के समुद्र में कोई 10 से 100 फुट नीचे चल रही इस पट्टी को चिह्नित कर चुका था। केवल चिह्नित ही नहीं, उसने उसका शानदार उपयोग भी खोज निकाला। उसने इस जिप्सम की पट्टी के कारण रेत में छिपी नमी को सचमुच निचोड़ कर मीठा पानी निकाल लेने का एक बेहद पेचीदा, जटिल इंतजाम कर लिया था। इन इलाकों में हमारी आने-जाने वाली सभी तरह की सरकारों ने ट्यूबवैल, हैंडपंप आदि लगवाकर इन गाँवों को पानी देने का काम जरूर किया था, पर यह तो खारा ही था।

बेहद पढ़े-लिखे, विकसित जर्मनी के इलाके से बुलाई गई एक नई खर्चीली तकनीक से इन नए यंत्रों से निकल रहे खारे पानी को मीठा बनाने की कोशिश

की गई। इस उठापटक के 5-7 वर्षों में गाँवों ने अपनी पद्धति को छोड़ भी दिया था। पर जब पानी का खारापन खत्म नहीं हुआ, बल्कि इतना बढ़ गया कि गाय, बकरियों तक ने उसे पीना छोड़ दिया तो इन इलाकों में अब फिर धीरे-धीरे कुंई बनाने, टूटी फूटी छोड़ दी गई कुंईयों को फिर से ठीक करने और अपने दम पर फिर से मीठा पानी पाने का इंतजाम वापस लौटने लगा है। गाय, बकरी, भेड़ों द्वारा पीने से मना किया गया पानी देने को ही विकास का, आधुनिकता का प्रतीक मानने वाली कोई तीन-चार सरकारें इस बीच राज्य में आईं और वापस भी लौट चुकी हैं। शिक्षा के आंदोलन भी गैरसरकारी स्तर पर यहाँ चले हैं और अनेक समाजसेवी संस्थाओं ने भी जल चेतना का नारा लगाया है। पर कुंई की वापसी गाँव के दम पर ही हुई है और एक बार फिर इस अक्षर ज्ञान ने, क्षरण न हो सकने वाले ज्ञान ने, शिक्षण ने, उस निराकार संगठन ने खारे पानी के बीच मीठा पानी जुटाया है।

दूसरा बिलकुल विलक्षण उदाहरण जैसलमेर क्षेत्र में एक विशेष तरह की खेती से जुड़ा है। यह भी मेट यानी जिप्सम की पट्टी से ही जुड़ा अद्‌भुत विज्ञान है। कहीं-कहीं यह पट्टी ज़मीन की सतह के आसपास बहुत ही कम गहराई पर ऊपर उठ आती है। तब इसमें रेत में छिपी नमी इतनी नहीं होती कि वह अच्छी मात्र में मीठा शुद्ध पानी दे सके। तो क्या समाज इसे ऐसे ही छोड़ दे? नहीं। अनपढ़ माने गए समाज ने इस तरह के भूखंडों पर आज से कोई 600 बरस पहले एक प्रयोग किया और मात्र 3 इंच की वर्षा में गेहूँ, चना जैसी रबी की फसल उगाने का नायाब तरीका खोज निकाला। किसी भी आधुनिक कृषि पंडित, विशेषज्ञ से पूछें कि क्या 3 इंच बरसात में गेहूँ पैदा हो सकता है? वह इस प्रश्न का उत्तर देने के बदले पूछने वाले को पागल ही मानेगा।

ऐसे विशिष्ट भूखंडों पर समाज ने एक विशेष तरह की मेंड़बंदी कर इस जरा सी वर्षा को जिप्सम तक अटका कर खडीन नाम कीमती खेत का अविष्कार किया। उसने इस खेत में कृषि के अविश्वसनीय काम तो किए ही, इसमें उसने समाज शास्त्र के, आपसी सद्‌भाव के, समभाव के, शोषण मुक्त समाज के, स्वामित्व विसर्जन के, यानी मिल्कियत मिटाने के भी शानदार सबक सीखे और सिखाए भी। आज सामूहिक खेती के जो प्रयोग दुनिया में भारी भरकम क्रांतियों के बाद, हजारों लोगों को मारने के बाद भी सफल नहीं हो पाए, उन्हें यहाँ के विनम्र, मौन, शांत समाज ने अपने खडीन पर चुपचाप कर दिखाया है।

प्राय: अकाल से घिरे इन गाँवों में बरसात ठीक हो जाए तो एक फसल होती है। बरसात न हो तो वह भी हाथ से जाती है। पर खडीन में दो फसलें ली जा

सकती हैं। खरीफ भी, रबी भी। हमारे पढ़े लिखे समाज को लगेगा कि ऐसा विशिष्ट खेत तो उस क्षेत्र के, गाँव के ठाकुर, बलवान, सामाजिक पहलवान के कब्जे में ही रहता होगा।

ऐसा नहीं है। यह एक बहुत ही संवेदनशील जटिल सामाजिक ढाँचे पर टिकाया गया है। गाँव में यदि प्रकृति की दया से खडीन जैसा खेत है तो फिर वह गाँव के सब घरों का खेत है। सबके सब उसके मालिक हैं। या कहें कि उसका कोई भी मालिक नहीं होता। लास नामक एक उन्नत सामाजिक प्रथा से इस खेत का सारा काम चलता है। लास शायद संस्कृत के उल्हास से बना है। इसमें सब मिलकर काम करते हैं। यह श्रमदान से भी कहीं ऊँची चीज है। इसमें सारे काम को उल्हास से, आनंद से जोड़ा गया है। लास के अपने गीत होते हैं और वे टी. वी., कैसेट, एफ एम, मोबाइल के इस दौर में भी गायब नहीं हुए हैं।

गाँव के सारे घर मिलकर काम करते हैं, सब के सब। जाति-पाँति का कोई भेद नहीं। खेत तैयार करने से लेकर बुवाई, निंदाई, गुड़ाई, फसल कटने तक में पूरा का पूरा गाँव एक साथ जुटता है। फसल कटने पर उसके उतने ही हिस्से होते हैं और हर ढेर हर घर पहुँच जाता है। कोई बीमार, अशक्य, वृद्ध, महिला हो, पुरुष हो, उसे हर काम से अलग रखा जाता है। पर प्रायः ऐसे सदस्य भी खडीन के किनारे किसी बबूल या खेजड़ी या जाल पेड़ की छाँव में बैठने आ ही जाते हैं। गाते हैं, बच्चों को सँभाल लेते हैं। अपंग और कोई नेत्रहीन भी है, तो भी वह लास खेलने के लिए इस उत्सव को गँवाना नहीं चाहता। सबकी मेहनत, सबका हिस्सा। वर्ण-सवर्ण-दलित का यहाँ कोई भी पाठ नहीं पढ़ा जाता। सब मालिक, सब मजदूर, सब उत्पादक, सब उपभोक्ता, सब शिक्षक, सब शिष्य भी बस यही पाठ खड़ीन में पढ़ाया जाता रहा है।

जीवन की शिक्षा का, समाज की शिक्षा का, जीवन जीने की कला का ऐसा सुंदर पाठ हम पढ़े-लिखों ने ठीक से जाना तक नहीं है। मरुभूमि में अनेक सामाजिक आंदोलन, शिक्षा के आंदोलन इस सुंदर खड़ीन की पाठशाला से बिना टकराए निकल गए हैं।

पानी के बहाने इस समाज ने शिक्षण के सचमुच कुछ अविश्वसनीय प्रयोग किए हैं। ये दो-पाँच बरस चलने वाले प्रयोग नहीं हैं। पंचवर्षीय योजनाओं जैसे नहीं हैं। ये तो पाँच सौ बरस की लंबी उमर सोचकर बनाए गए हैं। आधुनिकता की आँधी, समाज से कटी शिक्षा, जीवन शिक्षा के इन प्रयोगों को पूरी तरह से उखाड़ नहीं पाई है।

पिछले वर्ष इसी प्रतिष्ठित व्याख्यान में इंग्लैंड से आए दार्शनिक श्री क्रिस्टोफर विंच ने अपने भाषण के अंत में कहा था, ''गांधी आज होते तो देश के तेजी से हो रहे ऐसे आर्थिक विकास के कई पहलुओं से वे खुश नहीं होते। वे तो नागरिक को उत्पादक की केन्द्रीय भूमिका में रखना चाहते थे। यह वह भूमिका है जो उसकी मानवता और सच कहें तो उसकी आध्यात्मिकता के महत्त्वपूर्ण भाग को निखारती है।''

हमारे अनपढ़ माने गए समाज ने गांधीजी की इस बात का खूब ध्यान रखा और नागरिक को उपभोक्ता से पहले आदर्श उत्पादक ही बनाने की पाठशाला खोली थी।

आपने मुझे इस प्रतिष्ठित व्याख्यान में जिस बड़े उद्देश्य को ध्यान में रख कर बुलाया था, मुझे मालूम है कि मैं उसे पूरा कर पाने लायक नहीं हूँ। पर श्री कृष्ण कुमार जी का प्यार यहाँ मुझे ले ही आया है तो अंत में मैं विनोबा के एक कथन से इस प्रसंग को समेटना चाहूँगा।

विनोबा ने कहा है कि पानी तो निकलता है, बहता है समुद्र में मिलने के लिए पर रास्ते में एक छोटा-सा गड्ढा आ जाए तो वह उसे भर कर खत्म हो जाता है। वह उतने से ही संतोष पा लेता है। वह कभी ऐसी शिकायत नहीं करता, कभी इस तरह नहीं सोचता कि अरे मुझे तो समुद्र तक जाने का एक महान उद्देश्य, एक महान लक्ष्य, एक महान सपना पूरा करना था।

मरु प्रदेश के समाज ने अपने जीवन के छोटे-छोटे प्रश्न खुद हल किए हैं, अपने जीवन के छोटे-छोटे गड्ढे भरे हैं। छोटे-छोटे गड्ढे भर सकना सीखना अच्छे शिक्षण का एक उम्दा परिणाम, एक अच्छी उपलब्धि माना जाना चाहिए- इतनी विनम्रता हमें हमारी शिक्षा सिखा सके तो शायद हम समुद्र तक जाने की शक्ति भी बटोर लेंगे।

वक्ता के बारे में

अनुपम मिश्र वर्ष 1977 में पर्यावरण कक्ष के संचालक के रूप में गांधी शांति प्रतिष्ठान से जुड़े। वर्ष 1977 से सन् 2000 तक उन्होंने कुल मिलाकर छोटी-बड़ी 17 पुस्तकें लिखीं। इनमें *जीवन का आधार पानी, ओरण : मरुभूमि में हरियाली की चादर, रीते घट भरने की रीत : कुण्ड, मिट्टी बचाओ अभियान, नर्मदा, हमारा पर्यावरण, देश का पर्यावरण* (अनुवाद-संपादन), *चिपको आंदोलन, चंबल की बंदूकें गांधी के चरणों में, आज भी खरे हैं तालाब* और *राजस्थान की रजत बूँदें* प्रमुख हैं। इनमें से अधिकांश पुस्तकें आउट ऑफ प्रिंट हो चुकी हैं।

श्री मिश्र की दो पुस्तकों 'आज भी खरे हैं तालाब' और 'राजस्थान की रजत बूँदें' का समाज ने अच्छा स्वागत किया है। इसकी क्रमशः एक लाख से ऊपर प्रतियां छप चुकी हैं तथा विभिन्न संस्थाओं ने इनके मराठी, गुजराती, कन्नड़, पंजाबी, अंग्रेजी और फ्रेंच अनुवाद भी प्रकाशित किए हैं। इनके अलावा अकाल की परिस्थितियों में देश के 21 आकाशवाणी केंद्रों ने इन पुस्तकों को पूरा का पूरा प्रसारित किया है। कुछ ने ऐसे प्रसारण में संगीत आदि जोड़कर उन्हें और भी सरस बनाया है। तालाब पुस्तक की एक सीडी भी ऑल इंडिया रेडियो ने तैयार की है।

मध्य प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात, नवगठित प्रदेश उत्तराखण्ड और छत्तीसगढ़ में पानी के काम को वहाँ की सरकारों के विभिन्न विभागों ने, संस्थाओं और आंदोलनों ने आगे बढ़ाया है। मध्य प्रदेश सरकार ने 'आज भी खरे हैं तालाब' पुस्तक की पच्चीस हजार प्रतियों का एक विशेष संस्करण छपवाकर ग्राम पंचायतों को निःशुल्क उपलब्ध कराया है।

कर्नाटक सरकार ने 5000 तालाबों के पुनरुद्धार के लिए एक स्वतंत्र विभाग बनाया है और यह विभाग तालाब पुस्तक का कन्नड़ अनुवाद भी कर रहा है। पानी से संबंधित इस काम का प्रभाव पेरिस की एक प्रमुख शिक्षण संस्था ''इंस्टीट्यूट नेशनल द लैंग्वेजिज एट सिविलिइजेशन्स आरियंटल्स'' पर भी पड़ा है। इस संस्थान ने 'राजस्थान की रजत बूंदें' को फ्रांसिसी भाषा में अनुवादित किया है। इस पुस्तक का उपयोग अफ्रीका की मरुभूमि में काम कर रही शिक्षण संस्थाओं के बीच भी हो रहा है ।

रिसर्च फाउंडेशन फार साइंस टेक्नॉलाजी-इकोलॉजी ने 'राजस्थान की रजत बूँदें' का अंग्रेजी अनुवाद करके प्रकाशित किया है।

अनुपम मिश्र ने सन् 2001 से 2006 तक पर्यावरण कक्ष के साथ-साथ गांधी शांति प्रतिष्ठान के सचिव की जिम्मेदारी भी निभाई।

वे गांधी शांति प्रतिष्ठान, गांधी स्मारक निधि, सोसाइटी फॉर प्रमोशन ऑफ वेस्टलैंड डेवलेपमेंट, समभाव जैसी संस्थाओं के नियामक मंडलों के सदस्य हैं।

उन्होंने इसी विषय में वर्ष 1992 में के.के. बिड़ला फांउडेशन फैलोशिप के दौरान पारंपरिक जल संरक्षण के लिए काम किया।

उन्हें परती भूमि विकास तथा वनरोपण के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य के लिए भारत सरकार द्वारा प्रदत्त इंदिरा प्रियदर्शिनी वृक्ष मित्र पुरस्कार सर्वप्रथम वर्ष 1986 में मिला।

उन्हें दिल्ली हिंदी अकादमी द्वारा पर्यावरण साहित्य सम्मान वर्ष 1997 के लिए मिला।

उन्हें इंदिरा गांधी पर्यावरण पुरस्कार वर्ष 1996 पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा करने और जल-संरक्षण के क्षेत्र में योगदान के लिए मिला है।

भारत सरकार के केंद्रीय हिंदी संस्थान द्वारा हिन्दी में विज्ञान लेखन के लिए वर्ष 2003 में उन्हें आत्माराम पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

उन्हें वैज्ञानिक श्री टी.एन.खुशु स्मारक पुरस्कार वर्ष 2006 में प्रदान किया गया।

नीचे अवतरित सारणी संक्षेप में नौ व्याख्यान जो 2007-08 में आयोजित किये गए थे का ब्यौरा प्रदान करती है ।

स्मृति व्याख्यान माला-2007-2008

क्र.सं.	नाम	तारीख	स्थान	वक्ता	विषय वस्तु	चेयरपर्सन
1.	महात्मा गांधी स्मृति व्याख्यान	17 जनवरी, 2007	इण्डिया इन्टरनेशनल सेंटर नई दिल्ली	क्रिस्टोफर विंच प्रोफेसर, एजूकेशनल फिलोसफी एण्ड पॉलिसी, किंग्स कॉलेज, लंदन (यू.के)	व्यक्ति, कामगार या नागरिक? विद्यालय आधारित शैक्षिक सुधार की सीमाओं पर विचार	प्रो. मृणाल मिरि फोरमर वाइस चांसलर एन.ई.एच.यू. शिलांग
2.	ज़किर हुसैन स्मृति व्याख्यान	19 जनवरी, 2007	क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान मैसूर	डा. राधिका हर्ज़बर्गर डायरेक्टर, ऋषिवैली स्कूल, चित्तौड़, आन्ध्र प्रदेश	धर्म, शिक्षा व शांति	प्रो. बी.एल. चौधरी वी सी, मोहनलाल सुखाडिया यूनीवर्सिटी, उदयपुर, राजस्थान
3.	महादेवी वर्मा स्मृति व्याख्यान	17 अगस्त, 2007	क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान भोपाल	प्रो. करूणा चानना फोरमर प्रोफेसर जाकिर हुसैन सेन्टर फॉर ऐजुकेशनल स्टडीज़, स्कूल ऑफ सोशल साइन्सेस, जे.एन.यू.	भारतीय शिक्षा जगत में महिलाएँ-एक प्रतिस्पर्धी क्षेत्र में विविधता, विभिन्नता और असमानता	प्रो.आर.एस.सिरोही वाइस चान्सलर बरकतुल्ला विश्वविद्यालय राजस्थान
4.	बी.एम. पुघ स्मृति व्याख्यान	11 मार्च, 2008	लैतुमुखरह वुमेन्स कॉलेज, शिलांग	श्री रतन थैयाम चेयर पर्सन कोरस रेपरटोरी थियेटर, शिलांग	रंगमंच, भाषा एवं अभिव्यक्ति	प्रो. टी ए ओ डीन स्कूल ऑफ ह्यूमिनिटीज एन.ई.एच.यू., शिलांग

क्र.सं.	नाम	तारीख	स्थान	वक्ता	विषय वस्तु	चेयरपर्सन
5.	मारजोरी साइकेस स्मृति व्याख्यान	8 अप्रैल, 2008	जवाहर रंग मंच क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान अजमेर	सुश्री मेघा पाटेकर (सामाजिक कार्यकर्ता)	समाजीकरण बनाम शिक्षा की राजनीति	प्रो. एम.एस.आगवानी वाइस चान्सलर जे.एन.यू.
6.	श्री अरविन्दो स्मृति व्याख्यान	2 जुलाई, 2008	डोरोज़ियो हाल प्रेसिडेन्सी कॉलेज कोलकाता	श्री मनोजदास इन्टरनेशनल सेंटर ऑफ एजुकेशन श्री अरविन्दो आश्रम पाण्डिचेरी	शिक्षा जो भविष्य में आस्था जगाए	प्रो. संजीब घोष प्रिंसिपल प्रेसिडेन्सी कॉलेज कोलकाता
7.	खीन्द्र नाथ टैगोर स्मृति व्याख्यान	19 जुलाई, 2008	रीजनल इंस्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन भुवनेश्वर	प्रो. एन.आर.मेनन मेम्बर कमीशन ऑन सेंटर स्टेट रिलेशन्स	स्थिति एवं अवसर की समानता का अहसास: सरकार की भूमिका, न्यायपालिका और नागरिक समाज की भूमिका	प्रोफेसर चंद्रशेखर रथ प्रतिष्ठित लेखक
8.	गिजुभाई बधेका स्मृति व्याख्यान	सितम्बर, 2008 (वक्ता की बीमारी के कारण स्थगित)	एम.आई.डी.एस. चेन्नई	श्री यू.आर. अनंथमूर्ति	जीवन के विद्यालय में एक लेखक कैसे बनें	डायरेक्टर एम.आई.डी.एस. चेन्नई
9.	सावित्री बाई फुले स्मृति व्याख्यान	12 दिसम्बर, 2008	मानीबेन नानावती महिला कॉलेज, मुम्बई	डॉ. सुन्दररमन डायरेक्टर स्टेट हैल्थ रिसोर्स सेंटर	एजूकेशनल इंस्टीट्यूट एज़ ए हैल्थ फैसिलिटी	प्रो. विभूति पटेल हैड एवं डायरेक्टर पी.जी.एस.आर एस.एन.डी.टी. वीमेन्स कॉलेज चर्चगेट, मुम्बई

टिप्पणी